# केशव-ग्रंथावली

## खंड १

( रसिकप्रिया और कविप्रिया )

संपादक

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र

हिंदी-विभाग, काशी विश्वविद्यालय

१९५४

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

( कवित्त )

बारे न बड़े न बृद्ध नाहिनै गृहस्थ सिद्ध,
बावरे न बुद्धिवंत, नारियौ न नर से।
अंगी न अनंगी तन ऊजरे न मैले मन,
स्यार ऊ न सूरे रन थावर न चर से।
दूबरे न मोटे रंक राजा ऊ कहे न जाइँ,
मर न अमर अरु आपने न पर से।
बेद हू न कछु भेद पाइजतु 'केसोदास',
हरिजू से हेरे हर हरि हेरे हर से ॥४७॥

( दोहा )

कोकिल से अति कृस्न घन करिनी सो गिरिराज।
मृग सूरो मृगराज सो, ऐसो बरनत लाज ॥४८॥

अथ संकीर्णोपमा–( दोहा )

बंधु, चोर, बादी, सुहृद, कल्प, बृच्छ, प्रभु जानि।
सम, रिपु, सोदर आदिदै, इतने अर्थ बखानि ॥४९॥

( कवित्त )

बिधु को सो बंधु किधौं चोर हासरस को कि,
कुंदन को बादी किधौं मोतिन को मीत है।
कल्प कलहंस को कि छीरनिधि छबि बृच्छ,
हिम-गिरि-प्रभा-प्रभु, प्रगट पुनीत है।
अमल अमित अंग गंगा के तरंग सम,
सुधा को सुबुद्धि रिपु रूपक अभीत है।
दिस दिस देस देस परम प्रकासमान,
किधौं 'केसोदास' रामचंद्रजू को गीत है ॥५१॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
विशिष्टालंकारवर्णने उपमालंकारवर्णनं
नाम चतुर्दशः प्रभावः ॥१४॥

---

[ ४९ ] बृच्छ–प्रच्छ (दीन०); बृष्यु (बाल०)। तरंग०–तरंगन को (दीन०)। सुधा०–सोदर सुधा को (दीन०); सुधा को समूह (सरदार०)। रूपक–रूपको (दीन०, सरदार०)।



# १५

अथ नखशिख-वर्णन–( दोहा )

सबिता के परताप ज्यौं बरन्यो कबिता-अंग।
कहौं जथामति बरनि त्यौं बनिता के प्रत्यंग ॥१॥
कही जु पूरब पंडितनि जाकी जितनी जानि।
तितनी अब ता अंग की उपमा कहौं बखानि ॥२॥
नख तें सिख लौं बरनियै देवी दीपति देखि।
सिख तें नख लौं मानुषी 'केसवदास' बिसेषि ॥३॥
जग के देवी देव के श्रीहरिदेव बखानि।
तिन हरि की श्रीराधिका इष्टदेवता जानि ॥४॥
भूषित तिनके भूषननि त्रिभुवनपति के अंग।
तिनके 'केसवदास' कबि बरनतु है प्रति अंग ॥५॥
उपमा और समान सब इतनो भेदु बखानि।
जावकजुत पद बरनियै महँदीसंजुत पानि ॥६॥

अथ जावक-वर्णन–( दोहा )

राजु रजोगुन को प्रगट प्राची दिसि को भागु।
रंगभूमि जावकु बरनि कोपराग अनुरागु ॥७॥

अथ जावक-वर्णन–( कवित्त )

कोमल अमलता की किधौं यह रंगभूमि
सोभिजतु अंगनु कि सोभा के सदन को।
अरुन दलनि पर कीनो कि तरनि कोप,
जीत्यो किधौं रजोगुनु राजिव के गन को।
पलु पलु प्रनय करत किधौं 'केसोदास'
लागि रह्यो पूरबानुरागु पिय-मन को।
एरी बृषभानु की कुमारि तेरे पाइँ सोहै
जावक को रंगु कै सुहागु सौतिजन को ॥८॥

अथ चरणोपमा–( दोहा )

अति कोमल पद बरनियै पल्लव कमल समान।
जलज कमल से चरन कहि कर कहि थलज प्रमान ॥९॥

---

[ ७ ] राजु–रागु (वाशिक०)। विशेष–नखशिख वाशिक अ० और दीन० में नहीं है।

आचार्य केशवदासकृत

# वीरसिंहदेव चरित

(व्याख्या सहित)

व्याख्याकार

*डॉ० किशोरीलाल*

शक १९१९ : सन् १९९७ ई०

**हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग**

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

समान थीं तथा वहाँ के लोग रजोगुण रहित थे (वे सब सात्त्विक गुण के थे)। दसों दिशाओं में (प्रत्येक ओर) विशाल दीप जल रहे थे और प्रतिदिन नवीन बंदनमालाओं से लोग अपने गृह को अलंकृत करते थे। प्रत्येक घर में लोग नाना प्रकार के मंगल गीत गाते थे तथा अपार नगाड़े और मृदंग बज रहे थे।

**गावत गीत सरस सुंदरी। चतुर चारु सो सुफरक फरी।**
**सुंदर दोऊ देवकुमार। गए चतुर्भुज के दरबार॥२२॥**
**देखे जाय चतुर्भुजदेव। जिनकी करत जगत सब सेव।**
**चंदन चर्चित एक प्रबीन। सोभत तहाँ बजावत बीन॥२३॥**

शब्दार्थ—सुफरक=सुफलक, सुफल। फरी=फली हुई। सुफरक फरी=समस्त कामनाओं से पूर्ण। चतुर्भुज=विष्णु (यहाँ विष्णु रूप वीरसिंहदेव से तात्पर्य है)। सेव=पूजा। चर्चित=लगा हुआ।

व्याख्या—वहाँ सुन्दरियाँ सरस गीत गा रही थीं। वे चतुर, सुंदर और अपनी समस्त कामनाओं से पूर्ण थीं। उन्हें सब प्रकार के फल की प्राप्ति हो चुकी थी। दोनों सुन्दर देवकुमार (लोभ और दान) विष्णु के दरबार में गये। वहाँ विष्णु को जाकर देखा कि उनकी अर्चना सारा संसार करता है। वहाँ कोई चतुर व्यक्ति चंदन लगाये हुए वीणा बजा रहा था।

**जिनकी धुनि सुनि मोहै सभा। मानौ नारद पावन प्रभा।**
**पढ़त पुरान एक बहुभेव। मानो सोभित श्री सुकदेव॥२४॥**
**बेद पढ़त बहु बिप्र कुमार। मानौ सोभत सनत कुमार।**
**सेवत संन्यासी तजि आधि। मनौ धरैं बहु सिद्ध समाधि॥२५॥**

शब्दार्थ—पावन प्रभा=निर्मल कांतियुक्त। बहुभेव=अनेक प्रकार से। आधि=मानसिक चिन्ता।

व्याख्या—उनकी वीणा की ध्वनि को सुनकर सारी सभा मोहित हो जाती है और ऐसा लगता है मानो साक्षात् निर्मल कांति से युक्त नारद की ही वीणा बज रही हो। कोई अनेक ढंग से पुराण बाँच रहा है और ऐसा लगता है मानो श्री शुकदेव ही शोभित हों। बहुत-से ब्राह्मणों के बालक वेद पढ़ रहे हैं,, लगता है मानो वे सब सनत् कुमार (ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में एक) हों। संन्यासी अपनी मानसिक चिन्ता से रहित होकर उनकी अर्चना करते हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो बहुत-से सिद्धगण समाधि लगाये हुए हैं।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।



**पंडित करत बिचार अनंत। षट दरसन जे मूरतिवंत।**
**गाय बजावत नाचत एक। जनु किंनर गंधर्ब अनेक॥२६॥**
**तहाँ दिगंबर नर देखियै। महादेव जू से लेखियै।**
**तिहिं अंगन अंगना अपार। भूषन पट पूरन सिंगार॥२७॥**

शब्दार्थ—षट दरसन=मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदान्त। एक=कोई। किंनर-गंधर्व=देवताओं की गानेवाली एक जाति। दिगंबर=नग्न रहनेवाले साधु। अंगना=स्त्री।

अवतरण—इसमें चतुर्भुज के दरबार की तुलना स्वर्ग में विष्णु के दरबार से की गयी है।

व्याख्या—इस दरबार में पंडितगण अनंत विचार (चिन्तन) करने में लीन हैं जो मूर्तिमान् षट् दर्शन हैं। कोई इस दरबार में गाता-बजाता है। ऐसा लगता है कि मानो ये स्वर्ग के किन्नर एवं गन्धर्व हों। वहाँ कुछ नग्न रहनेवाले साधु भी दिखायी देते हैं, उन्हें देखकर लगता है मानो ये विष्णु दरबार के शिव हों (शिव प्रायः नग्न रहा करते थे)। उस आँगन में भूषण तथा अच्छे वस्त्र पहने हुए और पूर्ण शृंगार (सोलह शृंगार) किये हुए बहुत-सी स्त्रियाँ थीं।

**क्षमा दया सी मूरतिवंत। श्री ह्री धी सी समुझत संत।**
**सोभति अति सुंदर सुभ सदा। संख चक्र कर पंकज गदा॥२८॥**
**पद ऊपरै स्याम तल लाल। बरनत 'केसव' बुद्धि बिसाल।**
**मनौ गिरा जमुना जल आय। सेवत चतुर चरन चित लाय॥२९॥**

शब्दार्थ—श्री=लक्ष्मी। ह्री=लज्जा, व्रीडा। धी=बुद्धि। तल=तलुवे। गिरा=सरस्वती, जिसका वर्ण रक्त माना गया है। चतुर=बुद्धिमान् (वीरसिंहदेव का विशेषण)। सेवत=पूजा करते हैं।

व्याख्या—ये स्त्रियाँ मूर्तिमान् क्षमा और दया थीं तथा संतजन उन्हें स्वर्ग की लक्ष्मी, बुद्धि और व्रीडा तुल्य समझते थे। चतुर्भुज के कमलवत् हाथ में शंख, चक्र और गदा शोभित है। उनके चरण के ऊपरी भाग श्याम और तलुवे रक्त हैं। केशवदास अपनी विशाल बुद्धि से उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि मानो सरस्वती (लाल तलुवे से अभिप्राय है) और यमुना (चरण के ऊपरी भाग जो यमुना की भाँति श्याम हैं) मन लगाकर (सानुराग) बुद्धिमान् (चतुर्भुज) की चरणोपासना कर रही हों)।

हीरा मनिमय नूपुर आय। स्वेत पाट पट जटे सुभाय।
नख दुति चमकति चरन मुकुंद। गंगाजल कैसे जल बुंद॥३०॥
गजमोतिन की माला लसै। साधुन कैसे मन उर बसै।
कंठमाल मुकुतनि की चारु। स्रुति बरनन कैसो परिवारु॥३१॥

शब्दार्थ—आय=लगे हुए (पहने हुए) हैं। पाट पट=रेशमी वस्त्र। जटे=रत्नजड़ित। सुभाय=अच्छा लगनेवाला। मुकुंद=विष्णु (वीरसिंहदेव से अभिप्राय है)। गजमोतिन=गजमुक्ता। स्रुति बरनन=श्रुतियाँ जिस तरह विष्णु का वर्णन करती हैं। कैसो=समान।

व्याख्या—चतुर्भुज अपने चरणों में हीरा और मणियों से जड़ित नूपुर पहने हैं। वे सुभग रत्न लगे श्वेत रेशमी वस्त्र धारण किये हैं। चतुर्भुज के चरणों के नाखून की प्रभा चमक रही है। वह गंगा के जलबूँद के समान प्रतीत होती है (चूँकि विष्णु के चरण में गंगा का निवास है, अतः चरण-नख की द्युति की तुलना विष्णुपदी-गंगा के जल से की गयी है)। उनके गले में गजमुक्ता की माला शोभित है, वह मन में उसी प्रकार बस जाती है जैसे सन्तों के मन में विष्णु बस जाते हैं। मोतियों की सुंदर कंठमाला भी उनके गले में शोभित हो रही है। श्रुतियाँ जिस तरह विष्णु का निरन्तर वर्णन किया करती हैं, ठीक उसी प्रकार उनका परिवार भी है।

टिप्पणी—इसमें उपमा अलंकार की प्रधानता है।

भृगुलताहु सोभा को सद्म। श्री कमलाकर कैसो पद्म।
कटितट छुद्रघंटिका बनी। बिच बिच मोतिन की दुति घनी॥३२॥
चंदन तिलक स्वेत सिर पाग। मुक्ता श्रुति सोभित सु सभाग।
देखत होय सुद्ध मन छुद्र। निकसे मथि जनु छीर समुद्र।
सीस छत्र मरकतमय दंड। मानौ कमल सनाल अखंड॥३३॥

शब्दार्थ—भृगुलताहु=भृगु मुनि के चरण का चिह्न जो विष्णु की छाती में है। सद्म=घर। श्री=लक्ष्मी। कमलाकर=तड़ाग, तालाब। कैसो=सदृश। पद्म=कमल। कटितट=कमर में। छुद्रघंटिका=करधनी। बनी=सोभित है। घनी=अत्यधिक। पाग=पगड़ी। अखंड=पूरा, सम्पूर्ण। सभाग=सौभाग्यशाली (वीरसिंहदेव का विशेषण)। मरकत=पन्ना नामक रत्न।

व्याख्या—विष्णु की छाती में भृगु ऋषि के चरण का चिह्न भी शोभा का घर है (अतिशय सुंदर है)। वह लक्ष्मी के सरोवर के कमल के समान सुंदर है।



उनकी कमर में करधनी शोभित है जिसमें बीच-बीच में मोतियों का अत्यधिक प्रकाश है। वे चंदन का तिलक लगाये हैं और सिर पर श्वेत पगड़ी बाँधे हैं। उनके कान में मुक्ता शोभित है। ऐसे रूप को देखकर छुद्र मन (दूषित मन) शुद्ध हो जाता है। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो क्षीरसागर मथकर निकाले गये हैं। उनके सिर पर छत्र और हाथ में मरकत मणि (पन्ना जड़ित) दण्ड है। ऐसा लगता है मानो सम्पूर्ण नाल (कमलदंड) सहित कमल हो।

टिप्पणी—इसमें उपमा से पुष्ट उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(दोहा)

बरनै कहा चतुर्भुजहि 'केसव' बुद्धि तुसार।
जिनकी सोभा सोभिजै सोभा सब संसार॥३४॥

शब्दार्थ—बुद्धि तुसार=बुद्धि पर तुषार-पाला पड़ गया है।

व्याख्या—केशवदास कहते हैं कि मेरी बुद्धि पर पाला पड़ गया है, अतः मैं चतुर्भुज का वर्णन क्या करूँ? (कैसे करूँ?), क्योंकि उनकी शोभा से ही विश्व की शोभा को शोभा प्राप्त होती है (विश्व की सुन्दरता उन्हीं की सुन्दरता से शोभित होती है)।

टिप्पणी—इसमें अतिशयोक्ति अलंकार की प्रधानता है।

(चौपही)

करि प्रनाम तब राजकुमार। देखत नगर गए बाजार॥३५॥

व्याख्या—इसके बाद उन्हें प्रणाम करके दोनों राजकुमार (दान और लोभ) नगर देखते हुए बाजार गये।

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजा श्री वीरसिंहदेव चरित्रे श्री चतुर्भुज दर्शनं नाम षोडशमः प्रकाशः॥१६॥

१७

अति लामी अति चौरो चारु। बिसद बैठकी ऊँच बिचारु।
दुपद चतुष्पद जन बहुभाँति। भाजन भोजन भूख न जाति॥१॥
डासन बासन आसन जानि। मूल फूल फल नवरस पानि।
आयुध सुखद सुगंध बिधान। चित्र बिचित्र बिबिध तन त्रान॥२॥

हो जाते हैं और उनके अनुकरण में अनेक मयूर चंद्रिका (मोर पंख में की आँखों) की रचना करते हैं। इनके नेत्र अत्यन्त चंचल और अनुपम हैं। इनकी रचना ब्रह्मा ने इन युवतियों के स्वरूप की रचना करने के अनन्तर की है।

टिप्पणी—इसमें परिकरांकुर, उपमा, विरोधाभास और प्रतीप अलंकार है। वास्तव में मयूर पंख में बनी आँखें चन्द्राकृति तुल्य दृष्टिगत होती हैं।

**जानि असम विधि किये सुजान। खंजन मीन मदन के बान।**
**कुच अनूप दुति रूपक भए। श्रीफल अमल सदाफल ठए॥४८॥**
**दाड़िम से सोभित सुभ दंत। करत करे करतार अनंत।**
**अति दुतिहीन जानि द्विजनाह। राखें मूंदि अनारनि माँह॥४९॥**

शब्दार्थ—असम=अप्रतिम, असमान, जोड़ का न होना। सुजान चतुर। कुच=स्तन। दुति रूपक=सौन्दर्य के उपमान। श्रीफल=बिल्व। सदाफल=नारियल, शरीफा। ठए=किया, बनाया। दाड़िम=अनार। करत=रचना करते समय। करतार=ब्रह्मा। दुतिहीन=कांतिहीन। द्विजनाह=द्विजराज, चन्द्रमा।

व्याख्या—नेत्रों की रचना करते समय उन्हें युवतियों के नेत्रों के असमान जानकर चतुर ब्रह्मा ने उनकी तुलना में खंजन, मछली और कामदेव के बाणों की रचना कर दी (उनके नेत्रों में खंजन पक्षी और मछली की चपलता और कामदेव के बाणों की तीक्ष्णता है)। उन युवतियों के स्तन सौन्दर्य के रूपक (उपमान) हैं। इनसे तुलना करने के लिए ब्रह्मा ने श्रीफल और स्वच्छ सदाफल (शरीफा) को बनाया (किन्तु वे उरोजों के समक्ष ठहर न सके)। इन युवतियों के सुन्दर दाँत दाड़िम (अनार) के दाने की ही भाँति शोभित हो रहे हैं। इनकी तुलना में ब्रह्मा ने अन्य दाँतों की रचना करते-करते अनंत दाँतों की रचना कर डाली, किन्तु इन्हें चन्द्रमा से अत्यधिक कांतिहीन जानकर अनारों में लज्जा के कारण छिपाकर रख दिया, क्योंकि उन्हें देख लेने पर लोग ब्रह्मा की भोड़ी कला का उपहास करते।

टिप्पणी—इसमें हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है। दाँतों की दीप्ति और सौन्दर्य में न चन्द्रमा ठहर सकता है और न दाड़िम। केशव की इस प्रकार की कल्पना अतिशय रमणीय और चित्ताकर्षक है।

**तिनकों तीन्यौ जन धरि धीर। बरनन लागे सकल सरीर।**
**जिनके दीरघ कोमल केस। सूच्छम स्यामल सुमिल सुदेस॥५०॥**



**उज्जल झलकति झलक सुबास। प्रभु मन होत देखि कै दास।**
**तिनकै बेनी-गुही बिचारि। रूप-भूप कैसी तरवारि॥५१॥**

शब्दार्थ—तिनकों=उन युवतियों को। दीरघ=बड़े-बड़े। सूच्छम=बारीक। सुमिल=एक ढंग के, समानरूपेण। सुदेस=सुंदर। झलक=कांति। सुबास=सुंदर वस्त्र। प्रभु मन=वीरसिंहदेव का मन। बेनी=चोटी। रूप-भूप=सौन्दर्य-रूपी राजा। कैसी=सदृश। तरवारि=तलवार।

व्याख्या—तीनों जन (वीरसिंहदेव, दान और लोभ) धैर्यपूर्वक (स्थिर बुद्धि से) उन रमणियों के समस्त शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करने लगे। उनके केश बड़े-बड़े, कोमल, बारीक, एक समान, श्याम और सुन्दर थे। उनके उज्ज्वल सुन्दर वस्त्रों की कांति झलक रही थी जिसे देखकर वीरसिंहदेव का मन उसका दास हो जाता था (उसके वशीभूत हो जाता था)। उनकी चोटी बहुत समझदारी के साथ गुही गयी थी और उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह सौन्दर्य-रूपी राजा की तलवार हो (यहाँ रमणियों के सौन्दर्य को राजा और श्याम चोटी को तलवार कहा गया है)।

टिप्पणी—अंतिम पंक्ति में रूपक अलंकार है।

**प्रिया प्रेम को देखनहारि। प्रतिभट कपटनि डाटनहारि।**
**किधौं सिंगार-सरित सुखकारि। बंचकतानि बहावन हारि॥५२॥**
**किधौं सिंगार-लोक के जानि। कंचनपत्र पाँति सौ मानि।**
**कैधौं प्रेम - आगमन - काल। रचे पाँवड़े रूप बिसाल॥५३॥**

शब्दार्थ—प्रतिभट=विपक्षी, शत्रु योद्धा। बंचकतानि बंचकता, धोखा। बहावनहारि=नष्ट कर देनेवाली। सिंगार-सरित=शृंगार की सरिता (कवि-परंपरा में शृंगार का रंग श्याम माना गया है)। पाँवड़े=पायंदाज़। देखनहारि=रक्षिका। कंचनपत्र=सोने के बने वेणी में पहनने के पान। पाँति=पंक्ति, समूह-श्रेणी, सीढ़ी।

अवतरण—युवतियों की चोटी का वर्णन।

व्याख्या—सौन्दर्य-रूपी राजा की तलवार की भाँति यह चोटी प्रियतमा के प्रेम की रक्षिका है और छल-कपट-रूपी विपक्षी (शत्रु) को डाटनेवाली है (डाँटकर भगा देनेवाली है, तात्पर्य यह है कि यह प्रेम में छल-कपट नहीं आने देती)। अथवा यह आनंददायिनी शृंगार की नदी है (श्याम चोटी को यहाँ शृंगार की नदी इसलिए कहा गया है कि शृंगार का रंग कवि-परम्परा में श्याम

माना गया है) जो वंचकता (छल-कपट) को बहा देनेवाली (नष्ट कर देने-वाली) है। अथवा उन चोटियों में जो वेणी पान नामक आभूषण गुहे हुए हैं वे ऐसे लग रहे हैं मानो शृंगार लोक में जाने की सीढ़ियाँ हों। अथवा प्रेमागमन समय विशाल सौन्दर्य के पाँवड़े बनाये गये हैं।

टिप्पणी—इस छंद में रूपक और संदेह अलंकार की प्रधानता है।

**पाटिनि चिलक चित्त चौगुनी। मानो दमकति घन दामिनी।**
**सेंदुर माँग भरी अति भली। तापर मोतिन की आवली॥५४॥**
**गंगा गिरी सों जनु तनु जोरि। निकसी जनु जमुना जल फोरि।**
**सीसफूल सिर जर्‌यो जराय। माँगफूल सोभियत सुभाय॥५५॥**

शब्दार्थ—चिलक=चमक। घन=बादल। दामिनी=बिजली। आवली=अवली, लड़ी। गिरा=सरस्वती (इसका रंग लाल माना गया है)। तनुजोरि=मिलकर। जर्‌योजराय=रत्न जटित। सुभाय=स्वाभाविक रूप में, सहज रूप में।

व्याख्या—उन रमणियों की पाटियों की चमक से चित्त में चौगुनी चमक उत्पन्न होती है (पाटियों की चमक से चित्त चौंधिया जाता है)। वह चमक इस प्रकार प्रतीत होती है मानों बादलों में बिजली चमक रही हो। माँग सिंदूर से भरी बहुत अच्छी मालूम होती है, उस माँग पर-जो सिन्दूर पूरित है–मोतियों की लड़ी है। उसकी शोभा इस प्रकार प्रतीत होती है, मानो गंगा की धारा सरस्वती की धारा से मिलकर यमुना-जल को फोड़कर निकल आयी हो (यहाँ श्याम पाटियों को यमुना, सिंदूर को सरस्वती और मोतियों की लड़ी को गंगा कहा गया है)। सिर पर एक रत्नजटित शीशफूल और एक माँगफूल स्वाभाविक रूप में शोभित है।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

**बेनी फूलनि की बरमाल। बेंदा मध्य भाल मनि लाल।**
**तम नगरी पर तेजनिधान। बैठे मनौ बारहौ भान॥५६॥**
**भृकुटी कुटिल बहु भायनि भरी। भाल लाल दुति दीसति खरी।**
**मृगमद-तिलक रेख जुग बनी। तिनकी सोभा सोहति घनी॥५७॥**

शब्दार्थ—तम नगरी=अंधकार रूपी नगरी (केशों से अभिप्राय है)। बहु भायनि भरी=अनेक भावों से भरी। कुटिल=टेढ़ी। खरी=स्पष्टता से। मृगमद=कस्तूरी। घनी=अतिशय। जुग=दो।



व्याख्या—१ शीशफूल, १ माँगफूल, वेणी में लगे ८ स्वर्णपत्र, १ फूलों की बर-माल जो वेणी में लगी है तथा मणि और लाल जड़ित एक बेंदा, सब मिलाकर जितने ये बारह जेवर हैं वे सब ऐसे प्रतीत हैं मानो अंधकार रूपी नगरी में तेज के भाण्डार बारहों सूर्य बैठे (निकले) हों। अनेक भावों से भरी टेढ़ी भौहें और ललाट की लाल कांति स्पष्ट रूपेण दिखाई पड़ती हैं। (भौहों के बीच में अर्थात् ठीक नाक के ऊपर) कस्तूरी तिलक की दो रेखाएँ ऊपर की ओर बनी हैं। उनकी शोभा बहुत अच्छी लगती है। और ऐसी लगती है—

टिप्पणी—इसमें रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार है।

**जनु जमुनाजल लखि सुभ गाथ। परसन पितहि पसारे हाथ।**
**लोचन मनौ मैन के जंत्र। भुज जुग ऊपर मोहन मंत्र॥५८॥**
**नासा दुति सब जग मोहियै। पहिरे मुक्ताफल सोहियै।**
**भाल तिलक रबि को व्रत लिये। रूप अकास दियो सो दियो॥५९॥**

शब्दार्थ—सुभगाथ=सर्व प्रशंसित। परसन=स्पर्श करने को। पितहि यमुना अपने पिता सूर्य को (यहाँ भाल पर लगा लाल टीका सूर्य है)। हाथ=यहाँ कस्तूरी की दोनों रेखाएँ दोनों हाथ हैं। मैन=कामदेव। जंत्र=(सं० यंत्र) फंदा या जाल। भुज जुग=दोनों भुजाएँ। रूप=सौन्दर्य। अकास दियो=आकाश दीप। दिये=दान किया है।

व्याख्या—मानो बहु प्रशंसित यमुना-जल ने (यहाँ भौहों से तात्पर्य है) लाल टीका रुपी सूर्य-जो उसके पिता हैं—को स्पर्श करने के लिए (उनकी गोद में जाने को) अपने दोनों हाथ फैलाए हों (यहाँ कुटिल भौहें यमुना, कस्तूरी की दोनों रेखाएँ दोनों हाथ और लाल टीका सूर्य है)। उनके नेत्र ऐसे लगते हैं मानो कामदेव के फंदे और दोनों भुजाओं के ऊपर ये मोहिनी मंत्र हों। उसकी नासिका की द्युति (चमक) ने सारे संसार को मोहित कर लिया। और उसमें जो मुक्ताफल (मोती) पहरे हैं वह अति शोभित हैं। उसे देखकर ऐसा लगता है मानो सौन्दर्य ने भाल-तिलक (भाल पर का बेंदा) रूपी सूर्य का व्रत ले रखा है, अतः उस सूर्य को उसने आकाशदीप का दान किया हो। (अगासिया जलाए हो)।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

**लोभि रहत लखि लोचन दुवौ। अरुन उदय तारो सो उवौ।**
**आनँद लतिका कैसो फूल। सूँघत सोम-सुधा को मूल॥६०॥**
**कलित ललित लावण्य कलोल। गोरे गोल-अमोल कपोल।**
**तिनमें परम रुचिर रुचि रई। मृग लोचन मरीचिका मई॥६१॥**

शब्दार्थ—लोभि रहत=लुब्ध रहते हैं। दुवौ=दोनों (नेत्र)। अरुन उदय=सूर्योदय। उवौ=उदित। कैसो=सदृश। सुधा को मूल=अमृत का स्रोत या मूल। कलित=युक्त। ललित=सुन्दर। कलोल=आमोद-प्रमोद। अमोल=अमूल्य। रुचिर=सुन्दर। रुचि=इच्छा, अनुराग। रई=रंजित हुई, अनुरक्त हुई। अगलोचन=नायकों के मृगनेत्र। मरीचिकामई=मृगतृष्णा से युक्त।

व्याख्या—नासिका के मुक्ताफल को देखकर दोनों नेत्र लुब्ध रहते हैं। नासिका के ये मोती सूर्योदय के तारे की भाँति उदित हैं (शिरोभूषण सूर्य है और मोती तारे हैं)। अथवा ये मोती आनंद रूपी लता में पुष्पित फूल हैं और इन्हें अमृत का मूल चंद्रमा (मुख) मानो सूँघ रहा है। युवतियों के गोरे गोल और अमूल्य कपोल सौन्दर्य, लावण्य और आमोद-प्रमोद (आनंद) से युक्त हैं। उन्हें देखकर अतिशय सुन्दर रुचि (अनुराग) जुड़ गयी (अनुराग उत्पन्न हो गया)। ये कपोल मृग नेत्रों के लिए मृगतृष्णा के समान हैं (जो उन्हें देखता है उनके पीछे-पीछे लग जाता है)।

टिप्पणी—इसमें उपमा और रूपक अलंकार की प्रधानता है।

**श्रुति ताटंक सहित देखियै। एकचक्र रथ सो लेखियै।**
**झलकति झुलमुलीन की पाँति। मानो पीत ध्वजा फहिराति॥६२॥**
**मानिकमय खुटिला छबि मढ़े। तिन पर तमकि तपन जनु चढ़े।**
**द्विजगन अधर अरुन रुचि रए। देखि दाड़िमी लज्जित भए॥६३॥**

शब्दार्थ—श्रुति=कान। ताटंक=कर्णफूल। एकचक्र=सूर्य। लेखियै समझना चाहिए। झुलमुलीन=झूमक, झुमका। पाँति=पंक्ति। खुटिला=कान का एक भूषण। तमकि=क्रुद्ध होकर। तपन=सूर्य। द्विजगन=दाँतों का समूह। छबि मढ़े=सौन्दर्य-मंडित। अधर अरुन रुचि=ओष्ठों की लालिमा से। रए=रंजित हो गये हैं (लाल रंग के हो गये हैं)। दाड़िमी=अनार।

व्याख्या—रमणियों के ताटंक (कर्णफूल) सहित कान इस प्रकार दिखाई पड़ते हैं मानो सूर्य का रथ हो। कानों में स्वर्ण झूमकों की पंक्तियाँ झलक रही हैं (आलोकित हो रही हैं)। ऐसा लग रहा है मानो पीली ध्वजा फहरा रही हो। उनके सुन्दर माणिक्य युक्त, खुटले ऐसे लग रहे हैं मानो उन पर क्रुद्ध होकर सूर्य ने चढ़ाई कर दी हो (माणिक्य युक्त खुटले में सूर्य की कल्पना की गयी है—यहाँ माणिक्य की लालिमा सूर्य का क्रोध से तमतमाता चेहरा कहा गया है)। उन रमणियों के दाँत ओष्ठों की लालिमा में रंजित होकर लाल हो गये हैं। ऐसे लाल दाँतों को देखकर अनार लज्जित हो गये।



टिप्पणी—इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, तद्गुण और प्रतीप अलंकार है।

**किधौं रतनमय संध्योपासन। किधौं वाग्देवी आराधन।**
**तिनके मुख सुबास कों लियै। उपबन मलय बिपिन सो कियै॥६४॥**
**मृदु मुसक्यानि लता मन हरै। बोलत बोल फूल से झरै।**
**तिनकी बानी मुनि-मनहारि। बानी बीना धरी उतारि॥६५॥**

शब्दार्थ—वाग्देवी सरस्वती देवी। सुबास=सुगंध। मलयबिपिन=चंदन वन। बानी=सरस्वती।

व्याख्या—अथवा ये दाँत उन रमणियों के मुख में इस प्रकार लगते हैं मानो रत्नमय होकर सन्ध्योपासना कर रहे हों। (दाँतों को 'द्विज' कहा गया है और 'द्विज' ब्राह्मण अर्थ में भी प्रयुक्त है, अतः द्विजों का सन्ध्योपासना करना स्वाभाविक है)। अथवा ये सरस्वती देवी की आराधना कर रहे हैं (उज्ज्वल दाँतों में सरस्वती की कल्पना बड़ी रमणीय है)। (वार्ता करते समय) उनके मुख की सुगंध से उपवन के पवन ने समस्त बगीचे को चंदन बन जैसा बना दिया। उनकी मंद मुस्कराहट रूपी लता मन को मोहित कर लेती है और बोलते समय उससे फूल से झरते रहते हैं। उनकी वाणी मुनियों के भी मन को हरण कर लेती है। उनकी ऐसी वाणी से लज्जित होकर सरस्वती ने अपनी वीणा उतार कर धर दी।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, ललितोपमा और प्रतीप अलंकार है।

**लटकै अलक अलक चीकनी। सूछम स्याम चिलक सों सनी।**
**नकमोती-दीपक दुति जानि। पाटी रजनि हियै हित आनि॥६६॥**
**जोति बढ़ावत बसा उसारि। मानौ स्यामल सींक पसारि।**
**कबिहित जनु रबिरथ तें छोरि। स्याम पाट की डारी डोरि॥६७॥**

शब्दार्थ—अलक=(सं० अलिक) ललाट। अलक चीकनी=चीकनी लटें। सूछम=सूक्ष्म, बारीक। चिलक=चमक, कांति। सनी=युक्त। पाटी रजनि=पाटीरूपी रात्रि। हियै=हृदय में। हित आनि=प्रकाश हेतु लाए गये हैं। उसारि=उकसाकर, बढ़ाकर। सींक=तिनका। पसारि=फैलाकर। कबि=शुक्र (यहाँ नासिका के मोती को शुक्र कहा गया है क्योंकि ज्योतिष में शुक्र का रंग श्वेत

माना गया है)। हित=लिए। छोरि=खोलकर। रबिरथ=यहाँ शिरोभूषण से तात्पर्य है। स्याम पाट=काली रेशम। डारी=डाल दी है, लटका दी है।

व्याख्या—उन रमणियों के भाल पर चीकनी, बारीक, श्याम और कांति युक्त लटें लटक रही हैं। नाक के मोती को दीपक का प्रकाश जानना चाहिए और उसे पाटी रूपी रात्रि के हृदय को प्रकाशमय करने के लिए मानो लाया गया है। अथवा ये श्याम लटें इस प्रकार प्रतीत होती हैं मानो शिरोभूषण रूपी सूर्य नाक के मोती रूप दीपक की बत्ती को काली सींक (तिनका) से फैलाकर और उससे उसे उकसाकर ज्योति बढ़ा रहा है। अथवा मानो सूर्यदेव (शिरोभूषण) ने अपने रथ से काली रेशम की रस्सी खोलकर शुक्र (नाक के मोती) को ऊपर चढ़ा लेने के लिए काली रेशम की डोरी लटका दी है।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा है। इसमें 'उतारी' पाठ दिया गया है जो स्पष्ट ही गलत है। यहाँ होना चाहिए 'उसारि'।

**रूपक रूप रुचिर रसभीन। पातुर पुतरी नैन नवीन।**
**नेह नचावत हित नरनाथ। मरकट लकुट लियै जनु हाथ॥६८॥**

शब्दार्थ—रूपक=मूर्ति। रूप=सौन्दर्य। रुचिर=सुन्दर। रसभीन=रस-मग्न। पातुर=नटी। हित=लिए। नरनाथ=राजा (वीरसिंहदेव)। मरकट=बंदर। लकुट=डंडा।

व्याख्या—उन रमणियों के सौन्दर्य की मूर्ति, सुन्दर रस में मग्न नेत्रों की नटी रूपी नवीन पुतली को मानो हाथ में डंडा लेकर स्नेह वीरसिंहदेव के लिए बंदर की भाँति नचा रहा है।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा से पुष्ट रूपक अलंकार है।

(दोहा)

**गगनचंद तें अति बड़ो त्रियमुख चंद बिचारु।**
**दई बिचारि बिरंचि जहँ कला चौगुनी चारु॥६९॥**

शब्दार्थ—गगनचंद=आकाशीय चंद्र। बिचारु=जानना चाहिए। बिरंचि=ब्रह्मा। चारु=सुन्दर।

व्याख्या—अकाशीय चन्द्रमा से स्त्री का मुख अत्यन्त बड़ा समझना चाहिए। इसी से ब्रह्मा ने बहुत विचार करके जहाँ (जिस मुख में) चंद्र से चौगुनी कलाएँ दी हैं (चन्द्र में १६ कलाएँ हैं, इसमें इस दृष्टि से ६४ कलाएँ हैं)।



टिप्पणी—इसमें व्यतिरेक अलंकार है। मुख में ६४ कलाओं के संबंध में लाला भगवानदीन का मत है—यद्यपि ६४ में ही नहीं रहती; तो भी ६४ कलाएँ कामशास्त्रानुकूल हैं और इनके सीखने सिखाने में मुख ही से काम लिया जाता है। इसलिए कवि ने इनका निवास स्त्री के मुख में माना है।

(दंडक)

**दीनौ ईस दंडबल दलबल द्विजबल,**
**तपबल प्रबल समीति कुलबल की।**
**'केसव' परमहंसबल बहुकोसबल,**
**कहा कहौ बड़ीयै बड़ाई दुर्गजल की।**
**सुखद सुबास बिधिबल चंद्रबल श्री को,**
**करत हो मित्रबल रच्छा पल पल की।**
**मंत्रबलहीन जानि अबला-मुखनि आनि,**
**नीके ही छिंडाय लीनी कमला कमल की॥७०॥**

शब्दार्थ—ईस=ईश्वर ने। दंड=कमलदंड, नाल; राजदण्ड। दल=कमल पत्र; राजसेना। द्विज=चन्द्रमा; ब्राह्मण। तप=कमलपक्ष में जलनिवास; राजपक्ष में पूर्व कृत तपस्या। समीति=समूह, राशि। कुल=कमल पक्ष में ब्रह्मा, लक्ष्मी, विष्णु; चंद्रमा आदि; राजपक्ष में क्षत्रिय वंश का। परमहंस=सुन्दर हंस पक्षी; तपस्वी। कोस=कमलकोश; खजाना। दुर्ग=अगम अगाध; कोट। सुबास=सुगंध; सुन्दरनिवास। बिधि=ब्रह्मा; कानून। चंद्र=चंद्रमा; भाग्य। श्री=कांति, शोभा; राज्य श्री। मित्र=सूर्य; मित्र राजा। आनि=आकर। नीके ही=भली-भाँति। कमला=कांति, शोभा।

अवतरण—इस छंद में उन अबलाओं के मुख की शोभा कमल से बढ़कर बतायी गयी है।

व्याख्या—(वीरसिंहदेव के प्रति दान और लोभ का कथन) महाराज, ईश्वर जैसे आपको राजदण्ड का बल दिया उसी प्रकार कमल को भी दण्ड (कमलनाल) का बल मिला है। जैसे आपके पास सेना का बल है, उसी प्रकार कमल को भी दल। (पुष्प-दल) का बल प्राप्त है। जैसे आपको ब्राह्मणों का बल (उनका आशीर्वाद) प्राप्त है उसी प्रकार कमल को भी द्विज (चंद्रमा) का बल मिला है (समुद्रोद्भूत होने के कारण चंद्र कमल का भाई है)। जैसे आप शक्तिशाली वंश के बल की राशि हैं (आपको प्रबल वंश की प्रचुर शक्ति मिली है), उसी प्रकार कमल को भी अपने

प्रबल वंश—ब्रह्मा, लक्ष्मी, विष्णु, चन्द्रमा आदि की शक्ति प्राप्त है। जैसे आपको महात्माओं और तपस्वियों का बल (शुभ कामनाएँ) मिला है, उसी प्रकार कमल को हंस पक्षी का बल मिला है (हंस पक्षी कमल की निरन्तर शोभा बढ़ाया करता है)। जैसे आपको कोश (खजाना) का बल मिला है, उसी प्रकार कमल को भी अपने कोश (कमल बीज, करहाट) का बल प्राप्त है। हम आपके कोट के जल की बड़ी बड़ाई (बहु प्रशंसा) क्या करें (उसके सम्बन्ध में क्या कहें, वह भी आपकी एक बहुत बड़ी शक्ति है, (क्योंकि कोट की इस खांई को शत्रु पार नहीं कर सकता), किन्तु कमल के भी उस अगाध जल की प्रशंसा हम कैसे करें जहाँ लोग उसे आसानी से स्पर्श नहीं कर सकते। जैसे आपको सुखद आवास (राजमहल) प्राप्त हैं उसी प्रकार कमल को भी सुखद सुगंध मिली है। जैसे आपको कानूनका बल मिला है (कानून के आधार पर आप राज्य का संचालन करते हैं) उसी प्रकार कमल को भी विधि (ब्रह्मा) का बल मिला है (कमल ब्रह्मा का पिता है)। जैसे आपको भाग्य का बल मिला है (आप अपने प्रबल भाग्य से राजा हैं) उसी प्रकार उसे भी चंद्र (चन्द्रमा) का बल मिला है (चंद्र कमल का वंशज है)। जैसे आप मित्र राजाओं के बल से पल-पल राज्य की श्री की रक्षा करते रहते हैं उसी प्रकार कमल भी मित्रबल (सूर्य प्रकाश) से अपनी कांति की रक्षा क्षण-क्षण किया करता है। फिर भी कमल को मंत्र बलहीन (असहाय) समझकर तुम्हारे बल पर गर्व करनेवाली (तुम्हारे बल के भरोसे) इन अबलाओं के मुख ने आकर कमल की शोभा (कांति) को भलीभाँति छीन लिया (अब कमल श्रीहीन हो गये और उनकी श्री इन अबलाओं के मुख मंडल में छा गयी)।

टिप्पणी—इसमें श्लेष से पुष्ट प्रतीप अलंकार है।

(दोहा)

**रमनी मुख मंडल निरखि राका-रमन लजाय।**
**जलद जलधि सिव सूल में राखत बदन छिपाय॥७१॥**

शब्दार्थ—रमणी=स्त्री। राका-रमन=चंद्रमा। जलद=बादल। जलधि=समुद्र। सूल=त्रिशूल। बदन=मुख।

व्याख्या—पूर्णिमा का चंद्रमा रमणियों के मुखमंडल की शोभा देखकर लज्जित हो जाता है। अतः वह लज्जा के कारण बादल, समुद्र और शंकर के त्रिशूल में अपने मुख को छिपाए रहता है।



टिप्पणी—इसमें प्रतीप एवं असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है। शंकर के त्रिशूल की ज्योति में चन्द्रमा की ज्योति क्षीण हो जाती है और वह दिखायी नहीं पड़ता, इसीलिए कहा गया है कि चंद्रमा अपना मुँह उसमें छिपाये रहता है।

(चौपही)

**ग्रीवनि ग्रीवनि इक बहुभाँति। अरुन पीत सित असित प्रभात।**
**बसी रागमाला सी आनि। सीख न सकल रागमालानि॥७२॥**
**हरिपुर सी सुरपुर दूखंत। मुक्ताभरन प्रभा भूखंत।**
**कोमल सब्दनिवंत सुबृत्त। अलंकारमय मोहन चित्त॥७३॥**

शब्दार्थ—ग्रीवनि=गला। इक बहुभाँति=एक से एक बढ़कर। अरुन=लाल। सित=श्वेत। असित=श्याम। प्रभात=प्रभामय। रागमालानि=राग-रगिनियाँ। हरिपुर=विष्णुलोक। सी=श्री, कांति। सुरपुर=स्वर्गलोक। दूखंत=कलंकित करती है। सब्दनिवंत=शब्दयुक्त। भूखंत=भूषित करते हैं। मुक्ताभरन=मोतियों के आभूषण। सुबृत्त=सुन्दर छंदों से युक्त; सुन्दर गोलाई लिये हुए। अलंकारमय=आभूषणों से युक्त, काव्यालंकारों से युक्त।

व्याख्या—उन युवतियों के गले में एक-से-एक बढ़कर लाल, पीले, श्वेत और श्याम प्रभा वाले आभूषण शोभित हैं। उनके कंठ इतने मृदु और संगीतमय हैं कि लगता है कि रागमाला ही समस्त राग-रगिनियों का ज्ञान प्राप्त करने हेतु आकर इनमें बस गयी हैं। इनकी भुजाओं को मोतियों के आभूषणों की प्रभा भूषित करती है और वह प्रभा विष्णुलोक और स्वर्ग की श्री (कांति) को कलंकित करती है (वह इस प्रभा से मंद पड़ जाती है)। जैसे सुकवि की कविता कोमल शब्दों वाली, सुंदर छंद युक्त और अलंकारमय होती है और काव्य-प्रेमियों के चित्त को मोहित करती है, उसी प्रकार इनकी सुन्दर बाहु भूषणों से युक्त हैं और जिनसे भूषणों के कारण कोमल शब्द होता है, वे गोल और भूषण युक्त हैं और नायक के चित्त को मोहित करती हैं।

टिप्पणी—इसमें प्रतीप अलंकार है।

**काव्य पद्धतिहि सोभा गहैं। तिन सों बाहुकोस कबि कहैं।**
**नवरँग नव असोक के पत्र। तिनमें राखत राजकलत्र॥७४॥**
**देखु दान, दीनन के नाथ। हरति कुसुम के हारति हाथ।**
**सुंदर अँगुरिनि मुँदरी बनी। मनिमय सुबरन सोहति घनी॥७५॥**

शब्दार्थ–काव्य पद्धतिहि=काव्य रीति जैसी, काव्यवत्। बाहुकोस=बाहु-पाश। कवि कहैं=कवि कहते हैं। नवरँग=नवीन रंगों से युक्त। नव असोक के पत्र=उँगलियों का उपमान। राजकलत्र=राजा की पत्नी। दीनन के नाथ=दीनों पर कृपा करनेवाले (दान का विशेषण)। हरति=तोड़ते समय। हारति=थक जाते हैं। मुँदरी=अँगूठी। बनी=शोभित है। सुबरन=स्वर्ण। घनी=बहुत।

व्याख्या—इस दृष्टि से कविगण काव्य-रीतियों की भाँति बाहु-पाश की शोभा का वर्णन करते हैं अर्थात् ये बाहु काव्यवत् मनोहर हैं। (दान प्रति वीरसिंहदेव का कथन) हे दीनों पर दया करनेवाले दान जरा देखो तो, इन युवतियों के हाथ की उँगलियाँ नवीन अशोक के पत्र के समान नूतन रंगों से युक्त और कोमल हैं। बड़ा आश्चर्य है कि ये इतनी कोमलांगी हैं कि फूल तोड़ने में इनके हाथ थक जाते हैं फिर भी राजपत्नियों को ऐसे कोमल हाथों में ही रखती हैं (अपने हाथ में लिये रहती हैं)। इनके हाथों की सुन्दर उँगलियों में मणिजड़ित सोने की अँगूठियाँ हैं जो अतिशय शोभित होती हैं।

अलंकार—इसमें रूपकातिशयोक्ति और दुसरी विभावना अलंकार है।

**राजलोक के मनु रुचि रए। कामनीनि जनु कर गहि लए।**
**अति सुंदर उदार उरजात। सोभासर में जनु जलजात॥७६॥**
**अखिल रूप जलमय करि धरे। बसीकरन चूरन चय भरे।**
**काम कुँवर अभिषेक निमित्त। कलस रचे जनु जोबन मित्त॥७७॥**

शब्दार्थ—राजलोक=रनिवास के लोग। रुचि रए=सौन्दर्य में अनुरक्त हो गया। उरजात उदार=उच्च स्तन। सोभासर=शोभा-रूपी तड़ाग। जलजात=कमल। अखिल रूप=समस्त सौन्दर्य। चय=समूह। निमित्त=लिए। जोबन मित्त=यौवन-रूपी मित्र। कलस=घट, कलश।

व्याख्या—उनकी उँगलियों की रत्नजटित अँगूठी इस प्रकार प्रतीत होती है, मानो कामिनियों ने राजघराने के लोगों के सुन्दर मन (सौन्दर्य में अनुरक्त मन) को अपने हाथों में पकड़ रखा है (उन्हें वशीभूत कर लिया है)। उनके अत्यंत सुंदर और उच्चस्तन इस प्रकार प्रतीत होते हैं मानो वे सौन्दर्य-रूपी तड़ाग के कमल है। अथवा सारे संसार का सौन्दर्य जल के रूप में इनमें (स्तन-रूपी घटों में) रखा गया है या इनमें वशीकरण का बहुत-सा चूर्ण भरा है (जो इन्हें देखता है वह इनके वश में हो जाता है अथवा यौवन रूपी मित्र ने युवराज कामदेव के अभिषेक के लिए कलश (घट) बनाये हैं।



टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा और रूपक है।

**(दोहा)**

**रोमराजि सिंगार की ललित लता सी लोभ।**
**ताहि फले कुच रूप फल लै जनु जग की सोभ॥७८॥**

शब्दार्थ—रोमराजि=रोमावली। ललित=सुंदर। लोभ=लुभावनी, लुब्ध कर देनेवाली है। ताहि=उसके। कुच=स्तन। सोभ=शोभा, सौन्दर्य।

अवतरण—युवतियों की रोमावली का वर्णन।

व्याख्या—युवतियों की रोमावली श्रृंगार की लता की भाँति मोहित करनेवाली है (श्रृंगार का रंग कवि-परम्परा में श्याम माना गया है और रोमावली भी श्याम है) उसमें मानो संसार की शोभा को लेकर स्तन-रूप फल फले हैं।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार है।

**(चौपही)**

**अति सूछम रोमालि सुबेस। उपमा दान दई सब सेस।**
**उर में मनौ मैन सुचि रेख। ताकी दीपति दिपति असेख॥७९॥**
**बामन बाँधि एक बलि लोभ। तीनि लोक की लीनी सोभ।**
**बाँधि त्रिबलि त्रिय त्रिगुनित भई। नव नव खंडन की छबि छई॥८०॥**

शब्दार्थ—सूछम=सूक्ष्म, बारीक। रोमालि=रोमावलि। सुबेस=सुंदर। सेस=शेष, बची हुई। मैन=कामदेव। सुचि रेख=सुंदर रेखा। दीपति=दीप्ति, चमक। दिपति=झलक रही है। असेख=सम्पूर्ण। बलि=दानवों का राजा बलि; उदर में नाभि के ऊपर दिखायी देनेवाली रेखा। सोभ=शोभा। नवखंडन=नवलोक। त्रिबलि=उदर में पड़नेवाली तीन रेखाएँ।

अवतरण—रोमावलि का वर्णन।

व्याख्या—उन रमणियों की रोमावलि बहुत बारीक और सुंदर है। उसकी शोभा के सम्बन्ध में दान ने सभी बची हुई उपमाएँ खर्च कर दीं। यह रोमावलि छाती में मानो कामदेव की सुन्दर रेखा है (इनके हृदयों में काम बसा है) और उसी की अनन्त दीप्ति (आभा) झलक रही है (कामदेव का भी रंग श्याम माना गया है, अतः रोमावलि को कामदेव की रेखा कहना बहुत सटीक प्रतीत होता है)। (यहाँ कवि नायिकाओं की त्रिवली का वर्णन कर रहा है) वास्तव में लोभ के

वशीभूत वामन भगवात् ने एक ही बलि (दैत्यराज) को बाँधकर तीनों लोकों की शोभा ग्रहण की (बलि को अपनी वाणी से बाँधकर तीनों लोकों में अपनी मर्यादा प्रतिष्ठित की) किन्तु नायिका सारे संसार को अपनी त्रिवली में बाँधकर त्रिगुणित (तिगुनी) शक्ति से परिपूर्ण हो गयी अर्थात् जहाँ बलि को बाँधकर वामन ने तीन लोकों की शोभा ली, वहीं इन रमणियों ने नव लोकों की शोभा ग्रहण की- इनकी त्रिवली में नव खंडों की शोभा छा गयी।

टिप्पणी—इसमें व्यतिरेक अलंकार है। यहाँ केशव ने 'बलि' और 'त्रिबलि' शब्द के द्वारा अपनी असाधारण चमत्कारमूलक प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

**कटि को तत्व न जान्यौ जाय। ज्यौं जग सत न असत कहि जाय।**
**इहि तें अति नितंब गुर भए। कटि के बिभव लूटि सब लए॥८१॥**
**सिसु तारुन्य-आगमन जानि। उर में लोभ भोग प्रति मानि।**
**अति सुंदर जंघा जुग जानि। उज्जल पृथुल अलोम बखानि॥८२॥**

शब्दार्थ—तत्व=ठीक बात। इहि तें=इससे, इस कारण। नितंब=चूतड़। गुर=भारी। बिभव=संपत्ति। सिसु तारुन्य-आगमन=वयःसंधि। जुग=दोनों। पृथुल=मोटे। अलोम=रोमरहित, चिकने।

व्याख्या—उन युवतियों की कमर की ठीक बात जानी नहीं जाती। यह उसी प्रकार नहीं जानी जाती जैसे संसार के बारे में ठीक यह नहीं कहा जा सकता कि यह सत्य है अथवा असत्य। दूसरे शब्दों में कमर का अस्तित्व सुना ही जाता है, वह है या नहीं है, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। चूँकि नितंब प्रदेश ने कटि की सारी सम्पदा लूट ली, इससे ये भारी हो गये (यौवन के आगमन पर नायिका की कटि क्षीण हो जाती है और नितंब प्रदेश भारी हो जाता है)। वयः-संधि समझकर जंघाओं के हृदय में सुखभोग के प्रति लालच उत्पन्न हो गया। अतः वयः संधि के समय दोनों जंघाएँ अति सुन्दर, उज्ज्वल, मोटे और रोमरहित दिखलायी पड़ती हैं।

टिप्पणी—इसमें उदाहरण अलंकार है।

**छवा छबीले छबि के हियैं। नैननि पैने जाहिं न छियैं।**
**चरन महावर चर्चित चारु। तिनको बरनत दान उदारु॥८३॥**
**कठिन जानु जनु उपबन थरी। मानिक तरुता तरवनि धरी।**
**नव द्युति बरनत कवि कुल थकैं। पिय-मन की मानो बैठकैं॥८४॥**



शब्दार्थ—छवा=ऐंड़ी। छबीले=सुंदर। छबि के हियैं=सौन्दर्य का हृदय (प्राण) है। पैने=तीक्ष्ण। छियैं=(पं०) स्पर्श करना। चर्चित=लगा है, रंजित। चारु=सुंदर। थरी=स्थली। मानिक तरुता=यह पाठ स्पष्ट ही भ्रष्ट प्रतीत होता है। यहाँ पाठ 'मानिक तरिता' होना चाहिए 'मानिक तरि' का अर्थ होगा माणिक्य की जूती। तरवनि=तलुवे। धरी=धारण की है, पहने हैं। बैठकैं=कुर्सी।

व्याख्या—उन युवतियों की सुन्दर ऐंड़ी मानो सौन्दर्य का प्राण हो (उनके ऐंड़ियों से सौन्दर्य सजीव हो जाता था)। उन ऐंड़ियों पर दृष्टि पड़ने से उनकी सुंदरता गंदी हो जाती, इस कारण तीक्ष्ण दृष्टि से वे स्पर्श नहीं किये जा सकते। उनके चरण सुंदर महावर से चर्चित (युक्त) हैं। उन चरणों का वर्णन उदार दान इस प्रकार कर रहा है—मानो उपवन स्थली को कठोर जानकर उन चरणों के तलुवों में माणिक्य की जूती पहना दी गयी है (यहाँ महावर को माणिक्य की जूती कहा गया है) क्योंकि कठोर उपवन में चलने योग्य उन युवतियों के कोमल चरण नहीं हैं। उन चरणों की नव द्युति का वर्णन करते कविगण हार गये। वह मानो प्रियतम के मन के बैठने की कुर्सी है (उसी द्युति में मन रीझा रहता है)।

टिप्पणी—इसमें अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा है। फारसी की भाँति नाजुक ख्यालात की प्रधानता इन छन्दों में भी है।

**नूपुर मनिमय पायनि बने। मानौ, रुचिर विजय बाजने।**
**पद जुग जेहरि रूप निधान। रति गृह कैसे सुभ सोपान॥८५॥**
**छुद्रघंटिका कटि सुभ वेष। ससि अनंत कैसे परिवेष।**
**बरन बरन अँगिया उर धरैं। चौकी चलत चित्त मनु हरैं॥८६॥**
**मनिमय अमित हार उर बसैं। किरन चलत जुत भुज रबि लसैं।**
**अंचल अति चंचल रुचि रचै। लोचन चल जिनके सँग नचै॥८७॥**

शब्दार्थ—बने=शोभित हैं। रुचिर=सुन्दर। बाजने=बाजे, वाद्य। जुग=दोनों। जेहरि=पायजेब। रूप निधान=सौन्दर्य-राशि। सोपान=सीढ़ी। छुद्र घंटिका=करधनी। सुभ=सुन्दर। वेष=अधिक। परिवेष=सूर्य या चन्द्र आदि के चारों ओर का मंडल। अँगिया=कंचुकी। बरन बरन=रंग-रंग की। चौकी=गले का एक आभूषण। जुत भुज=भुजा सहित। रुचि रचै=सौन्दर्य से युक्त। चल=चंचल।

**दुंदुभि सुनि कासीसुर चढ़्यौ। चढ़्यौ तिपुर सबही बर बढ़्यौ।**
**राजाराम साहि गलगज्यौ। बीरसिंघ को दुंदुभि बज्यौ॥११॥**
**तमकि चढ़्यौ तब साहि संग्राम। ताके चित्त बस्यौ संग्राम।**
**इन्द्रजीत अरु राउ प्रताप। बाँधे कवच लिए कर चाप॥१२॥**

शब्दार्थ—दुंदुभि=नगाड़ा। चढ़्यौ=चढ़ाई कर दी। बर=बल, शक्ति। गलगज्यौ=गरजने लगे। तमकि=क्रुद्ध होकर, उत्तेजित होकर। संग्राम=युद्ध। चाप=धनुष।

व्याख्या—युद्ध के नगाड़े की आवाज सुनकर कासीसुर ने चढ़ाई कर दी। कासीसुर के चढ़ाई करने पर तिपुर ने भी चढ़ाई कर दी और उसकी सेना के सभी योद्धाओं की शक्ति बढ़ गयी। इसी बीच राजा रामशाह ने भी युद्ध की गरजना कर दी (ललकारने लगे)। (उनकी गरजना सुनकर) वीरसिंह के नगाड़े बजने लगे। उस समय शाह संग्रामसिंह ने उत्तेजित होकर चढ़ाई कर दी और उनके चित्त में एकमात्र युद्ध का ही भाव बस गया। इन्द्रजीत और राव प्रताप ने अपने कवच बाँध लिये और हाथों में धनुष ले लिया।

**उग्रसेन अरु केसौदास। जानत हैं बहु जुद्ध बिलास।**
**ठाकुर और कहाँ लौं कहौं। कहन लेउँ तौ अन्त न लहौं॥१३॥**
**दोऊ दल बल सज्जित भए। बहुधा व्योम बिमानन छए।**
**राजसिंघ की पति पद्मिनी। नव दुलहिनि गुन सुख सद्मिनी॥१४॥**

शब्दार्थ—बिलास=क्रीड़ा, कला। ठाकुर=क्षत्रिय। लौं=तक। कहन लेउँ=कहने लगूँ। बहुधा=अधिक। बिमानन=देवताओं के रथ। पति=मर्यादा, प्रतिष्ठा। पद्मिनी=कामशास्त्र के अनुसार चार नायिकाओं में से एक, जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसके शरीर से पद्म की सुरभि निकला करती है और यह नायिका सभी दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। दल=सेना। सद्मिनी=छोटा गृह (यहाँ खानि या आकर से तात्पर्य है)।

व्याख्या—उग्रसेन और केशवदास इस युद्ध की क्रीड़ा (कला) के सम्बन्ध में बहुत अधिक जानकारी रखते हैं। वहाँ इतने क्षत्रिय योद्धा थे कि उनकी गणना कहाँ तक की जाय? यदि उनके सम्बन्ध में कुछ कहा जाय तो उसका अन्त नहीं है। दोनों की सेनाएँ शक्ति युक्त होकर युद्ध के लिए सज्जित हो गयीं। (इस युद्ध को देखने के लिए) आकाश में देवताओं के अत्यधिक विमान छा गये। इस



सेना में राजसिंह की मर्यादा उस पद्मिनी जाति की नयी दुल्हन की भाँति है जो गुण और आनन्द की खानि है।

टिप्पणी—यहाँ से केशवदास ने पति (मर्यादा) में नव दुल्हन के समस्त गुणों का आरोप करके लम्बे सांग रूपक का निर्वाह किया है।

**सिर सब सीसौदिया सुदेस। बानी बड़गूजर बर बेस।**
**श्रुति सिरफूल सुलंकी जानु। लोचन-रुचि चौहान बखानु॥१५॥**
**भनि भदौरिया भूषित भाल। भृकुटि भेटि भाटी भूपाल।**
**कछवाहे-कुल कलित कपोल। नैषध-नृप नासिका अमोल॥१६॥**
**दीखत दसन सुहाड़ा हास। बीरा बैस बनाफर बास।**
**मुख-रुख मारू, चिबुक चंदेल। ग्रीवा गौर, सुबाहु बघेल॥१७॥**
**कुल कनौजिया कंचुकि चारु। कुच करचुली कठोर बिचारु।**
**पानि पवैया परम प्रवीन। नृपनाहर नखकोर नवीन॥१८॥**
**कौसल कटि जादौ जुग जानु। पद पल्लव कैकेय बखानु।**
**तोंबर मनमथ, मन पड़िहार। पट राठौर, सरूप पँवार॥१९॥**
**गूजर वे गति परम सुबेस। हावभाव भनि भूरि नरेस।**
**केसौ मारू सखि सुखदानि। दामोदर दासी उर जानि॥२०॥**

शब्दार्थ—सीसौदिया=(सीसोदिया) क्षत्रियों की एक जाति। सुदेस=सुंदर। बानी=वाणी। बड़गूजर=क्षत्रियों की जाति-विशेष। बर बेस=सुंदर वेश। श्रुति सिरफूल=श्रुतिफूल (कर्णफूल), सिरफूल (सीसफूल)। सुलंकी=सोलंकी, क्षत्रियों की एक जाति। जानु=जानो। लोचन-रुचि=नेत्र-सौन्दर्य। भनि=कहिए। भदौरिया=क्षत्रियों की एक जाति। भेंटि=दी है। भाटी=क्षत्रियों की जाति-विशेष। भूपाल=राजा। कछवाहे=क्षत्रियों की जाति-विशेष। कलित=सुंदर। कपोल=गाल। नैषध-नृप=नैषध देश के राजा। अमोल=अमूल्य। दसन=दाँत। हाड़ा=क्षत्रियों की जाति-विशेष। बीरा=बीड़ा, ताम्बूल। बैस=बैसवार क्षत्रियों की जाति-विशेष, इसका उल्लेख ज्योतिरीश्वर कवि शेखराचार्य ने स्व 'वर्णरत्नाकर' में भी किया है (देखिए, वर्ण रत्नाकर, अष्टमः कल्लोलः, पृ० ६१)। बनाफर=क्षत्रियों की जाति-विशेष। बास=वास, सुगंध। मुख-रुख=मुख की चेष्टा या आकृति। मारू=मरुस्थल के रहनेवाले क्षत्रिय। चिबुक=ठुड्डी। चंदेल=क्षत्रियों की जाति-विशेष। ग्रीवा=गला। गौर=क्षत्रिय-विशेष। सुबाहु=सुंदर भुजाएँ। बघेल=क्षत्रिय-विशेष। कनौजिया=क्षत्रिय-विशेष। कुल=वंश। कंचुकि=चोली। चारु=सुंदर। कुच=स्तन।

करचुली=क्षत्रिय-विशेष। पानि=(सं० पाणि) हाथ। पवैया=पवार्यां के क्षत्रिय-विशेष। नृपनाहर=राजाओं में सिंह के सदृश। नखकोर=नाखून की कोर। कटि=कमर। जादौ=यादव। जुग=दोनों। जानु=जाँघ। पदपल्लव=कोमल किसलय के समान चरण। कैकेय=कैकेय देश। बखानु=वर्णित कीजिए। तोंबर=तोमर, क्षत्रियों की जाति-विशेष। मनमथ=कामदेव। पड़िहार=परिहार क्षत्रिय-विशेष। पट=वस्त्र। स्वरूप=आकृति। पँवार=क्षत्रिय-विशेष। गूजर=क्षत्रिय-विशेष। परम सुबेस=अतिशय सुंदर। गति=चाल। भनि=कहना चाहिए। भूरि नरेश=बहुत-से राजागण। केसौ=कवि केशवदास। मारू=अकबर की सेना से सम्बन्धित एक अधिकारी जिसका विशेष ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है। सुखदानि=सुख देनेवाली। दामोदर=अकबर की सेना का एक अधिकारी जिसका विशेष विवरण इतिहास ग्रंथों में प्राप्त नहीं है।

**व्याख्या**—सीसोदिया ही राजसिंह की पति (मर्यादा या प्रतिष्ठा) रूपी दूल्हन का सुंदर सिर है। सुंदर वेशधारी बड़गूजर ही उसकी वाणी है। सोलंकी को उसका कर्णफूल एवं सीसफूल समझना चाहिए। चौहान को उनके नेत्रों का सौन्दर्य जानना चाहिए। उसके अलंकृत माथा को भदौरिया समझो। भाटी राजाओं ने मानो उसे भौंहें भेंट की हों (भाटी राजाओं को ही उसकी भृकुटी समझो)। कछवाहों का वंश ही उसका सुंदर कपोल है और नैषध देश के राजा ही उसकी अमूल्य (अद्वितीय) नासिका हैं। हाड़ा ही उसके दाँतों से दिखायी देनेवाली हँसी है। बैसवार क्षत्रिय ही उसके मुख का ताम्बूल है और बनाफर (क्षत्रिय-विशेष) ही उस ताम्बूल से निकलनेवाली सुगंध है। मरुस्थल के क्षत्रिय ही उसके मुख की चेष्टा हैं और चंदेल उसकी ठुड्डी है। गौर उसका गला और बघेल ही उसकी सुंदर भुजाएँ हैं। कनौजियों का वंश उसकी सुंदर चोली और करचुली (क्षत्रिय-विशेष) को उसके कठोर स्तन समझना चाहिए। अतिशय चतुर पवैया ही उसके हाथ हैं और राजाओं में सिंहवत् नरेश ही उसके नुकीले नये नाखून हैं। कौसल के राजा ही उसकी कटि (कमर) हैं और यादवों को उसकी दोनों जाँघ जानना चाहिए। कैकेय देश के क्षत्रिय ही उसके पल्लव सदृश कोमल चरण हैं। तोमर को कामदेव (काम-वासना) और परिहार को मन जानिए। राठौर उसके वस्त्र हैं और पवाँर उसकी सुंदरता। वे गूजर ही जो राजसिंह की सेना में हैं उसकी अतिशय सुंदर चाल हैं। बहुत-से अन्य नरेशों को उसका हाव-भाव समझना चाहिए। केशवदास और मारू उसकी सुखदायिनी सखियाँ हैं। दामोदर को मन में उसकी दासी जानना चाहिए।



टिप्पणी—इस छन्द में आचार्य केशवदास ने सांगरूपक अलंकार के द्वारा अपने पांडित्य को प्रदर्शित किया है।

(दोहा)

**राजसिंघ पति पद्मिनी दुलहिनि रूपनिधान।**
**दूलह मधुकर-साहि-सुत बिरसिंघदेव सुजान॥२१॥**

शब्दार्थ—रूपनिधान=सौन्दर्य की खानि, सौन्दर्य-राशि। सुजान=चतुर, प्रवीण।

व्याख्या—राजसिंह की मर्यादा (प्रतिष्ठा) रूपी दूल्हन सौन्दर्य की राशि है (पद्मिनी जाति की सुंदरी है) और उसके दूलह मधुकरशाह के पुत्र प्रवीण (बुद्धिमान्) वीरसिंहदेव हैं।

टिप्पणी—इसकी प्रथम पंक्ति में रूपकालंकार है।

(चौपही)

**तिनको सिर स्वयंभुमय मानि। श्रवननि कौं बैश्रवन बखानि।**
**भाल भलौ भागनिमय मानि। बृष कंधर, सुर मेघ बखानि॥२२॥**
**भुज जुग भनि भगवती समान। अति उदार उर तुमहिं समान।**
**कटि नरकेहरि के आकार। जानु बरुन मय रूप कुमार॥२३॥**

शब्दार्थ—स्वयंभुमय=ब्रह्मा स्वरूप। बैश्रवन=कुबेर। भाल भलौ=सुंदर माथा। भागनिमय=भाग्यस्वरूप। बृष कंधर=बैल के समान कंधा। सुर=स्वर मेघ=बादल। भुज जुग=दोनों बाँहें। भनि=कहना चाहिए। कटि=कमर। नरकेहरि=नृसिंह। जानु=घुटने। बरुन=जल के देवता। रूप=सौन्दर्य। कुमार=अश्विनीकुमार (देवताओं के वैद्य जो अति सुंदर माने गये हैं)। आकार=सदृश।

व्याख्या—(दान प्रति देवी का कथन) हे दान, उनके (वीरसिंहदेव के) सिर को ब्रह्मा स्वरूप जानना चाहिए और उनके कानों को कुबेर स्वरूप कहना चाहिए। उनके सुंदर माथे को भाग्यमय (भाग्यशाली) मानो और कंधे को बैल के समान तथा उनके स्वर (वाणी) को बादल के समान (मन्द्र) समझो। उनकी दोनों भुजाएँ भगवती के समान (शक्तिशाली) जानो तथा हृदय को हे दान, तुम्हारे ही (अपने ही) समान उदार समझो। उनकी कटि नृसिंह भगवान् के

सदृश जानो और दोनों घुटनों को वरुण स्वरूप एवं सौन्दर्य को अश्विनीकुमार के तुल्य जानिये।

**पद कर कँवल सुबाहन बास। आयुध सक्र-समान सहास।**
**जय कंकन बाँधे निज हाथ। पनरथ परम पराक्रम गाथ॥२४॥**
**टोपा सोभत मोर-समान। बागे सम सोहै तन-त्रान।**
**पावक प्रगट प्रताप प्रचंड। रक्षक नारायण नवखंड॥२५॥**
**पंच सब्द बाजत अवदात। सुभट बराती फौज बरात।**
**दोऊ दल बल बिग्रह बढ़े। देखत देव बिमाननि चढ़े॥२६॥**

शब्दार्थ—सुबाहन=सवारी (रथादि)। बास=(सं० वास) बाण का पंख। आयुध सक्र-समान=इन्द्र के समान हथियार (वज्र)। सहास=हास्य-युक्त (दंत)। टोपा=(टोप) शिरस्त्राण। पनरथ=(वारिरथ) पानी का रथ, नाव, जहाज। गाथ=गाथा। मोर=मौर, मुकुट। बागे=वस्त्र। तन-त्रान=कवच। पावक=ज्योति, आभा। प्रगट=प्रत्यक्ष। नवखंड=इलावर्त, रम्यक, कुरु, हरि, किंपुरुष, भरत, केतुमाल, भद्राश्व, हिरण्य। पंच सब्द=(पंचशब्द) पाँच मंगलसूचक बाजे—तंत्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही। अवदात=सुंदर, श्रेष्ठ। सुभट=योद्धा। बिग्रह=लड़ाई। बिमाननि=रथ।

अवतरण—इस छंद में केशव ने युद्ध में बारात का सांगरूपक बाँधा है।

व्याख्या—वीरसिंहदेव के कमलवत् चरण एवं हाथ ही उनकी सवारी (युद्ध-रूपी बारात में जाने वाले रथादि) और बाण के पंख (आतिशबाजी) हैं। उनकी प्रसन्नता की मुद्रा में खुलनेवाली हास्ययुक्त दन्तावली ही इन्द्र के समान हथियार (वज्र) है। वे अपने हाथ में विजय का कंकण बाँधे हुए हैं (दूलह विवाह के समय अपने हाथ में कंकण पहने रहता है)। उनके अतिशय शौर्य की गाथा ही जहाज है (युद्ध के समय जहाज या नावों द्वारा सेना को नदी पार करना पड़ता था। बारात भी इन्हीं साधनों से रास्ते में मिलनेवाली नदी को पार करती है)। उनका शिरस्त्राण ही मुकुट है (विवाह में दूलहा मौर धारण करता है)। उनके सुंदर वस्त्र के समान कवच शोभित है। उनका प्रचण्ड प्रताप ही बारात की प्रत्यक्ष ज्योति (बारात में की जाने वाली रोशनी) है। उनके रक्षक नवों खण्ड के स्वामी नारायण हैं। इस युद्ध-रूपी बारात में मंगलसूचक पाँच प्रकार के सुंदर बाजे (तंत्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही) बज रहे हैं। योद्धा ही इस युद्ध के बाराती हैं और सेना बारात है। दोनों शक्तिशाली सेनाओं में संघर्ष बढ़ गया। इसे रथ पर सवार देवगण देख रहे हैं।



टिप्पणी—'आयुध सक्र-समान सहास' में न्यून पदत्व दोष है। 'सहास' के साथ 'दन्तावलि' का प्रयोग होना चाहिए था, तभी शक्र आयुध (वज्र) की कल्पना सार्थक हो सकती है। वज्र का अन्य अर्थ हीरा भी है और इसी से सूर आदि कवियों ने श्रीकृष्ण के दाँतों की उपमा वज्र (हीरा) से दी है।

(दोहा)

**बीरसिंघ नृप दूलहै नृपपति दुलहिनि देखि।**
**घूँघट घाल्यौ भ्रमसहित सभय सकंप बिसेखि॥२७॥**

शब्दार्थ—नृपपति=राजसिंह कछवाहा की मर्यादा या प्रतिष्ठा। घाल्यौ=डाल दिया। सभय=डरते हुए। सकंप=काँपते हुए।

व्याख्या—वीरसिंहदेव-रूपी दूलहा को राजसिंह कछवाहा की मर्यादा-रूपी दूलहिन ने देखकर भ्रम, भय और विशेष कंप सहित (काँपते हुए) अपने मुँह पर घूँघट डाल दिया (घूँघट से मुँह बन्द कर लिया)। तात्पर्य यह है कि वीरसिंहदेव की भारी शक्ति से वह अतिशय सशंकित और भ्रमित थी।

टिप्पणी—भ्रम, भय और कंप शब्दों के द्वारा केशव ने संचारी भाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'नृपपति दुलहिनि' में रूपक अलंकार है।

(चौपही)

**घूँघट सों पट दुलहिनि नई। बीरसिंघ राजा गति लई।**
**देखी पति कासीसुर हाथ। कोप कियौ कूरम नरनाथ॥२८॥**
**जहँ तहँ बिक्रम भट प्रगटए। गज घोटक संघटित सु भए।**
**तुपक तीर बरछी तिहिं बार। चहूँ ओर तें चले अपार॥२९॥**
**जंग जागरा जंगल जुरे। काहू के न कहूँ मुँह मुरे।**
**हींसत हय, गाजत गज-ठाट। हाँकत भट बरम्हावत भाट॥३०॥**
**जहँ तहँ गिरि गिरि उठि उठि लरैं। टूटैं असि काढ़ैं जमधरैं।**
**भूलि न कोऊ जानै भाजि। मारत मरत सामुहै गाजि॥३१॥**
**अपने प्रभु कौं संकट जानि। उठ्यौ दमोदर गहि असि पानि।**
**सकल जागरा जुद्ध अमोर। चमू चाँपि आई चहुँओर॥३२॥**
**घोरो कट्यो धरनि धुकि गयौ। तब संग्राम पयादो भयौ।**
**तापर आयौ राउ प्रताप। संग लिये बहु सूरनि आप॥३३॥**